भूमिका

आधुनिक युग को गद्य युग कहा जाता है। आज गद्य साहित्य विशेष रूप से कहानी विधा की जितनी अधिक उन्नति संसार की भाषाओं में हुई है, उतनी अन्य किसी साहित्यांग की नहीं। साहित्य मानव मूल्यों के संरक्षण और संवर्धन का मुख्य आधार है। एकाग्र मन से साहित्य का अध्ययन और श्रवण करने से आनन्द की प्राप्ति होती है। कहानी ही एक ऐसी विधा है जो प्राचीन समय से चलती आ रही है और आज के समय में सबसे लोकप्रिय विधा के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत है। बाल्यकाल की अवस्था से ही मुझे कहानी पढ़ने और सुनने में विशेष रुचि रही है। कहानी के प्रति विशेष रुचि होने के कारण मैंने अपने शोध विषय का चयन करते समय कहानी को प्रमुखता दी। आखिर कहानी की रचना प्रक्रिया को समझने के लिए मैंने कहानियों के शिल्प पर शोध प्रस्तुत करने का विचार किया और अंततः मैंने **"पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' और सआदत हसन 'मंटो' की चयनित कहानियों का शिल्प विधान"** समस्या को अपने शोध के लिए चयनित किया। 'उग्र' और 'मंटो' दोनों ने ही समाज में व्याप्त अनेक विषमताओं एवं विसंगतियों-दरिद्रता, नग्नता, परवशता, दहेज, बाल-विवाह, ग्रामीण–शोषण, छुआछूत, बेरोजगारी, कालाबाजारी, भ्रष्टाचार, जातिवाद, संत्रास, हीनभाव, कुंठा, शून्यता, अकेलापन, विषाद, अजनबीपन आदि के यथार्थ चित्रण को अपनी कहानियों के विषय के रूप में चुना है, जो समकालीन रचनाकारों की तुलना में भिन्न है।

इस शोध प्रबंध का शीर्षक – ***"पाण्डेय बेचन शर्मा'उग्र'और सआदत हसन'मंटो' की चयनित कहानियों का शिल्प विधान"*** **है**। 'उग्र' और 'मंटो' दोनों की कहानियों के विविध पहलुओं का विश्लेषण इस शोध कार्य में किया गया है। इस विषय को एक अलग दृष्टि से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। देखा जाये तो अब तक इन दोनों ही लेखकों की रचनाओं का इस संदर्भ में अध्ययन प्रस्तुत नहीं है। मेरी जानकारी में चयनित कहानियों में शिल्प-विधान पक्ष को लेकर कोई शोध या आलोचना कार्य अथवा विवेचनात्मक, वर्णनात्मक अध्ययन दृष्टिगत नहीं होता। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर मैंने अपने शोध प्रबंध के लिए उपर्युक्त विषय का चयन किया है। इस शोध कार्य में कथा साहित्य की इन दोनों ही भाषाओं – हिंदी और उर्दू, की कहानियों के शिल्प-विधान के सन्दर्भ में वर्णन और विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध उपसंहार सहित पाँच अध्यायों में विभक्त है। साथ ही अंत में एक विस्तृत सन्दर्भ सूची भी प्रस्तुत है। ***'कहानी में शिल्प का सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य'*** नामक *पहले अध्याय* में मनुष्य के विकास के साथ-साथ कहानी में शिल्प के विकास को भी दर्शाया गया है। कथा साहित्य में कहानी के विकास की बात की गई है। स्वतंत्रता के पूर्व तथा पश्चात के लेखकों की रचनाओं के शिल्प में तथा बाद के शिल्प में क्या भिन्नता थी, उसको स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। शिल्प को समझने के लिए शिल्प के अर्थ तथा परिभाषा को प्रस्तुत किया गया है तथा स्वरुप की विवेचना करते हुए उसके विविध आयामों और तत्वों का विवेचन और विश्लेषण किया गया है। साथ ही साहित्य में शिल्प का क्या स्थान तथा महत्व है उसको रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध के दूसरे और तीसरे अध्याय में 'उग्र' और 'मंटो' की कहानियों के शिल्प सम्बंधित सभी तथ्यों को उजागर किया गया है, जिसमें उनकी कहानियों के कथानक, पात्रानुकूल भाषा, संवाद की विशेषताएँ तथा सम्पूर्ण कहानियों के रचना-विधान का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में 'उग्र' और 'मंटो' की कहानियों के कथोपकथन, मुहावरे, कहावतें और भाषा के स्वरुप और शब्दों के विभिन्न रूपों का संक्षेप में परिचय दिया गया है। साथ ही कहानियों में ग्रामीण व शहरी वातावरण का विश्लेषण के साथ-साथ लेखकों की कहानियों के उद्देश्य का विवेचन भी किया गया है।

'उग्र की कहानियों का शिल्प' नामक *दूसरे अध्याय* में हिंदी के विशिष्ठ लेखक पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का जीवन परिचय तथा उनके कृतित्त्व के साथ ही उनकी प्रतिनिधि कहानियों तथा उनकी कहानियों के शिल्प पर विस्तारपूर्वक विचार प्रस्तुत किया गया है।

'मंटो की कहानियों का शिल्प' नामक *तीसरे अध्याय* में उर्दू के निराले कथाकार तथा विवादास्पद लेखक के रोचक जीवन परिचय तथा कृतित्व की चर्चा के उपरांत उनकी कहानियों एवं उनकी कहानियों के शिल्प पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

''उग्र' और 'मंटो' की कहानियों का शिल्प-विधान : तुलनात्मक अध्ययन' सम्बन्धी *चौथे अध्याय* में दोनों रचनाकारों की कहानियों के शिल्प की तुलना की गयी है, जिनमें उनकी समताओं तथा विषमताओं पर प्रकाश डाला गया है। शिल्प सम्बन्धी विविध आयामों को

विश्लेषित करने की कोशिश की गई है। इसके लिए इन दोनों लेखकों की भाषा, बिम्ब, शैली, संवाद, परिवेश आदि को आधार बनाया गया है।

अंत में मैंने उपसंहार के अंतर्गत विवेच्य सभी अध्यायों का निष्कर्ष एवं प्रस्तुत शोध कार्य की उपलब्धियों को संक्षेप में प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि विवेच्य शोध प्रबंध – ***'पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र और सआदत हसन मंटो की चयनित कहानियों का शिल्प-विधान'*** विषय का अध्ययन हिंदी जगत के पाठकों व अध्येताओं के लिए लाभदायक सिद्ध होगा, ऐसी आशा की जाती है। सृजन व आलोचना के क्षेत्र में मेरा यह एक विनम्र प्रयास भर है कि दोनों ही रचनाकारों के विशिष्ठ साहित्य के मुख्यतः चयनित कहानियों के शिल्प को ही इस शोध प्रबंध में संकलित करने का प्रयास किया है।

मैं उन सभी लोगों के प्रति आभार अथवा धन्यवाद व्यक्त करना चाहूंगी जिन्होंने मेरे परियोजना कार्य को पूरा करने में मेरी मदद की वैसे इन लोगों ने मेरी जितनी मदद की उसके बदले में धन्यवाद या आभार व्यक्त करना तो मात्र एक औपचारिकता ही होगी।

सबसे पहले मैं अपने विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो. सूरज पालीवाल जी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। जिन्होंने मुझे ये परियोजना कार्य करने की अनुमति प्रदान की। इसके बाद मैं अपने शोध निर्देशक डॉ॰ बीर पाल सिंह यादव जी के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करुँगी जो की समय-समय पर मुझे अपना मार्गदर्शन देते रहे तथा मैं अपने विभाग के सभी अध्यापकों का हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ।

मैं अभिजीत कुमार मिश्रा तथा कविता के प्रति विशेष आभारी हूँ जिन्होंने मेरे शोध कार्य में बहुत ही मदद की है साथ ही मैं अपने परिवारजनों का भी हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ।

अर्चना सिंह

अनुक्रमणिका

पृष्ठ सं॰

भूमिका

पहला अध्याय

कहानी में शिल्प का सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य **(1-26)**

1.1 शिल्प : अर्थ और परिभाषा
1.2 साहित्य का स्वरुप और उसमें शिल्प का स्थान
1.3 साहित्य में शिल्प का अर्थ और उसकी विशेषताएँ
1.4 कहानी के तत्व

दूसरा अध्याय

उग्र की कहानियों का शिल्प **(27-47)**

2.1 जीवन परिचय

2.2 प्रतिनिधि कहानियाँ

2.3 कहानियों का शिल्प

तीसरा अध्याय

मंटो की कहानियों का शिल्प **(48-66)**

3.1 जीवन परिचय

3.2 प्रतिनिधि कहानियाँ

3.3 कहानियों का शिल्प

चौथा अध्याय

उग्र और मंटो की कहानियों का शिल्प-विधान : तुलनात्मक अध्ययन (67-96)

4.1 भाषा

4.2 शैली

4.3 संवाद योजना

4.4 परिवेश

4.5 शैल्पिक वैशिष्ट्य

उपसंहार (97-102)

सन्दर्भ-सूची (103-105)

पहला अध्याय

कहानी में शिल्प का सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

1.1 शिल्प : अर्थ और परिभाषा

1.2 साहित्य का स्वरूप और उसमें शिल्प का स्थान

1.3 साहित्य में शिल्प का अर्थ और उसकी विशेषताएँ

1.4 कहानी के तत्व

कहानी में शिल्प का सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

प्राचीन समय से ही किस्सागोई की समृद्ध परम्परा चली आ रही है। साहित्य मनुष्य को रस की अनुभूति कराता है। हिंदी साहित्य के गद्य के प्रादुर्भाव के साथ ही कई नूतन विधाओं का जन्म हुआ। इन नई विधाओं में एक विधा कहानी भी है, जिसका बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। कहानी पाठकों के मन में एक जिज्ञासा उत्पन्न करती है। परिवेश के रेशों में ही कहानी की संरचना अर्थ को खोलती है। कहानी की विशेषता उसकी भाषा और कथन शैली में विद्यमान रहती है, जो जिंदगी की पर्तों को उघाड़ती है।

मनुष्य का जैसे-जैसे विकास होता गया, वैसे-वैसे समाज को देखने का नजरिया और जीवन का ढंग बदलता गया। कहानियों का जैसे-जैसे विषय बदला, वस्तु बदली, रचनाकार और साहित्यकार के अनुभव के आधार पर जीवन दृष्टि बदली और शिल्प विधान के रूप में नए-नए आयाम विकसित होते गए। पहले कहानियों के शिल्प पर ध्यान नहीं दिया जाता था। प्रारम्भिक दौर में जो कहानियाँ लिखी जाती थी वह साहित्यकारों व पाठकों के लिए सिर्फ रोचकता और मनोरंजन का साधन मात्र थी लेकिन कहानी आज मनोरंजन का साधन न होकर मानव जीवन का ऐसा गद्य है जिसमें मनुष्य को पूर्णता से समझने और अभिव्यक्ति करने का प्रयास किया जाता है। आधुनिक समय में कहानी हिंदी साहित्य की एक सशक्त एवं महत्वपूर्ण विधा है।

कहानी में शिल्प-विधान का उतना ही महत्त्व है जितना कि उसके कथ्य और अनुभव संसार का। कहानी का आकर्षण, उसकी प्रभाव-अन्विति और सार्थकता इस पर भी निर्भर करती है। शिल्प के लिहाज से कहानी अन्य विधाओं की तुलना में अधिक स्वतंत्र और स्वछंद होती है। आदिकाल से लेकर अब तक की विकास यात्रा में कहानी के अनेक शिल्प विधान प्राप्त होते हैं।

शिल्प विधान के अनिवार्य हिस्से, स्थितियों के नाटकीय विन्यास, जीवन क्रियाओं का गहन संघर्ष, पात्रों के वार्तालाप में मूलकथ्य की अर्थवत्ता, उनकी मनोदशा की विविधता, प्रसंगों का आरोह-अवरोह, परिणति की और अग्रसर, केंद्रीय अनुभूति आदि है जिनके माध्यम से पाठक कहानी की घटनाओं और स्थितियों का सहज दर्शक ही नहीं बल्कि उसके अनुभवों में भागीदार भी बन जाता है।

सफल शिल्प-विधान की यह शर्त है कि वह पाठक की गहरी तल्लीनता और सक्रिय हिस्सेदारी ले सके। एक सफल और सार्थक कहानी पाठक की इतनी अपनी हो जाती है कि वह उसे हमेशा याद रखता है उसका हवाला देता है। वह उसके अनुभव, चेतना, दृष्टि और विवेक का अंग हो जाती है।

शिल्प विधान की सार्थकता का केंद्र कहानी की भाषिक संरचना है। कहानी की गहन और संश्लिष्ट अनुभूति, संवेदना और प्रयोजन के संप्रेषण के लिए भाषिक संरचना का अत्यधिक महत्त्व है। दरअसल कहानी के शिल्प के संबंध में तो अजीब बात यह है कि उसका शिल्प निरंतर विकासशील रहता है। कहानी के शिल्प में जितने भी नए प्रयोग हुये है शायद उतने अन्य किसी विधा में नहीं। वस्तु और शिल्प के सम्बन्धों की चर्चा प्रकारांतर से विवाद का विषय रहा है। शिल्प और वस्तु की एकात्मकता अथवा एकरूपता तथा अलग-अलग रूपों एवं विचारों के संबंध में विद्वानों के मतभेद हैं।

हिन्दी कहानी का शिल्प अपने प्रारम्भिक काल से लेकर आज तक प्रयोग के अनेक मोड़ों से गुजरते हुये निरंतर प्रवाहमान है। कहना न होगा कि शिल्प की सफलता रचना की उत्कृष्टता एवं सफल कलात्मकता के लिए अपरिहार्य है। जहाँ तक हिन्दी कहानी का सवाल है इसकी यात्रा बीसवीं शताब्दी के आरंभ से शुरू होती है। हिन्दी कहानी की इस विकास यात्रा मे बहुत जल्दी-जल्दी मोड़ आते गए और उन परिवर्तनों से गुजरती हुई कहानी आज ऐसे बिन्दु पर पहुँच गई है, जहाँ से उसके विकास की रेखाएँ स्पष्ट दिखाई देने लगी है। इस बिन्दु पर स्थित होकर यदि हम विकास की गति और स्थिति का मूल्यांकन करें तो कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं। पहला तो यह है कि कहानी ने बहुत कम समय में ही एक श्रेष्ठ साहित्यिक विधा का रूप ले लिया है। एक समय कहानी केवल मनोरंजन का साधन हुआ करती थी। उसका उद्देश्य केवल पढ़ने तक सीमित था, गंभीर विश्लेषण केवल कविता के साथ जुड़ा हुआ था। पर आज स्थिति भिन्न है। आज कहानी भी सम्पूर्ण जीवन के साथ जुड़ गई है और गंभीर विश्लेषण की चीज बन गई है। इसका प्रमुख कारण यह है कि आरंभ में हिन्दी कहानी को कुछ ऐसे प्रमुख कहानीकार मिल गए जिन्होंने अपनी उत्कृष्ट कला प्रतिभा से उसे उसके आरंभिक दौर की लड़खड़ाहट और अनगढ़पन से जल्दी मुक्त कर दिया। इस संदर्भ में 'उसने कहा था'(1915) का नाम लिया जा सकता है। उसने कहा था अपने कथ्य और शिल्प में मार्मिक एवं सुगठित है। प्रेम और कर्तत्व की महत्ता को दिग्दर्शित करने वाली बहुत कहानियाँ लिखीं गई, किन्तु आज तक अपनी कथ्य और संवेदना के कारण आज भी 'उसने कहा था' अद्वितीय बनी हुई है। इसके बाद प्रेमचंद का आगमन होता है जिन्होंने अपनी श्रेष्ठ रचनाओं से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। प्रेमचंद के समय में ही जयशंकर प्रसाद का कहानी

कला में आगमन होता है। दोनों के कहानी कला और कथ्य में बहुत अंतर है। जयशंकर प्रसाद की कहानियों में भावुकता, कल्पनाप्रवणता और काव्यात्मकता की प्रधानता है जो उनके कवि होने का परिचय भी देता है। प्रसाद की कहानियों में नाटकीय तत्त्वों का भी समावेश हुआ है। प्रसाद की प्रसिद्ध कहानियों में 'देवरथ', 'सालवती', 'पुरस्कार', 'आकाशदीप', 'विसाती' और 'मधुआ' आदि प्रमुख हैं। प्रेमचंद पहले आदर्शवादी लेखन कर रहे थे लेकिन आगे चलकर उन्होंने कहानी को मनुष्य के यथार्थ से जोड़ा। उन्होने कहानी में कल्पना की मात्रा कम करने पर बल दिया। उनकी कहानियों में उस समय के यथार्थ का चित्रण हुआ। इस यथार्थ के चित्रण के लिए शिल्प में भी परिवर्तन हुआ। अब कहानियों में से आदर्श गायब हो गया उसके स्थान पर यथार्थवादी रूप सामने आया। अब कहानियों में न तो कोई भूमिका होती हैं न ही कोई उपसंहार और न ही आदि, मध्य और अवसान होता है। पूरी कहानी एक तार में गुंफित होती है। प्रेमचंद की कफन, पूस की रात शतरंज के खिलाड़ी सद्गति आदि कहानियों में शिल्प का यथार्थवादी रूप दिखाई देता है। इस काल में शिल्प में परिवर्तन करने वालों में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने हिन्दी के राजनीतिक लेखक के रूप में अपनी अलग पहचान बनाई। उसकी माँ, दोज़ख की आग, चिंगारी, बलात्कार, भुनगा आदि में सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ का बड़ा ही प्राकृत रूप प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने सहज व्यंग्य में हिन्दी कहानी की भाषा को धार और सजीवता प्रदान की।

इसके बाद प्रेमचंद जी ने जो नींव डाली उसका आगे चलकर आगामी प्रसार हुआ। परिणामस्वरूप यशपाल, रांगेय राघव, भैरव प्रसाद गुप्त, नागार्जुन जैसे मार्क्सवादी और जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय जैसे मनोविश्लेषणवादी कहानीकार प्राप्त हुए। इन कहानीकारों ने अपने-अपने ढंग से यथार्थ को अपनी कहानियों में उतारा। इन कहानीकारों के अतिरिक्त भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क ने हिन्दी कहानी को आगे बढ़ाया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी कहानी में पर्याप्त बदलाव आया। इस समय के लेखकों को बदला हुआ यथार्थ प्राप्त हुआ जिसने सामाजिक सम्बन्धों, मूल्यों और मान्यताओं को नया संदर्भ प्रदान किया। यहीं से नई कहानी के आंदोलन का दौर आरंभ हुआ। इसके प्रमुख लेखकों में राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर के नाम प्रमुख है। नई कहानी में नया शब्द विचारणीय है। इसका प्रयोग केवल पहले की कहानी से पार्थक्य स्पष्ट करने के लिए नहीं अपितु इस कहानी की नई संवेदना नई दृष्टि और नए रूपबंध को रेखांकित करने की भावना थी। स्वतंत्रता मिलने के बाद सामाजिक-राजनीतिक

स्थितियों में जो परिवर्तन आया उन्हें अभिव्यक्त करने का जोखिम नये कहानीकारों ने उठाया। इस कहानी ने जीवन के जिस क्षेत्र से कहानी को उठाया वहीं से उसकी भाषा भी प्राप्त की। रेणु जैसे कहानीकारों ने आंचलिक कहानियों की रचना की। 'तीसरी कसम', 'लाल पान की बेगम', 'रसप्रिया', 'आदिमरात्रि की महक', 'ठेस', 'पंचलाइट', 'अग्निखोर' आदि ऐसी कहानियाँ है, जिसमें एक अंचल की कथा के साथ उसकी भाषा भी उसी अंचल की है। तो वहीं मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, अमरकांत, उषा प्रियम्वदा और भीष्म साहनी जैसे कहानीकारों ने नगर के मध्यमवर्गीय जीवन यथार्थ को प्रमाणिक ढंग से व्यक्त किया। 'मलबे का मालिक', 'मिस पाल', 'आद्रा', 'एक और ज़िंदगी', 'खेल खिलौने', 'जहां लक्ष्मी कैद है', 'राजा निरबंसिया', 'दिल्ली में एक मौत', 'ऊपर उठता हुआ मकान', 'डिप्टी कलक्टरी', 'दोपहर का भोजन', 'वापसी', 'मोहबंद', 'छुट्टी का दिन', 'ज़िंदगी और गुलाब के फूल', 'चीफ की दावत' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। नई कहानी में शिल्प का परिवर्तन रूप भी दिखाई देता है। इसमें सांकेतिक भाषा का प्रयोग किया गया। चीफ़ की दावत में संकेत माँ के चित्र के माध्यम से उभरता है तो दोपहर का भोजन में अभावग्रस्त घर की एक साधारण सी दोपहर के वर्णन से। नई कहानीकारों ने बिम्ब और प्रतीक का भी सफल प्रयोग किया है। निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, मार्कण्डेय, कमलेश्वर, शिवप्रसाद सिंह, अमरकांत आदि की कहानियों में हैं।

नई कहानी के बाद में कहानी आंदोलनों के चक्र में फंस कर रह गई। अकहानी, सचेतन कहानी, समानान्तर कहानी, जनवादी कहानी के आंदोलन चले। अकहानी ने कहानी की रूढ़ धारणाओं का तिरस्कार किया। सचेतन कहानी ने चातुर्दिक परिवेश से जुड़ने और अनुभूत यथार्थ को अभिव्यक्त करने पर बल दिया। कहानी में सपाटबयानी को महत्त्व मिला। गिरिराज किशोर, श्रवण कुमार, रवीन्द्र कालिया, ज्ञानरंजन, महीप सिंह, नरेंद्र कोहली, कामता नाथ, सुधा अरोड़ा, गोविंद मिश्र, हिमांशु जोशी, काशीनाथ सिंह, ,मधुकर सिंह की कहानियों में शिल्प कथ्य में समा गई है। सातवें दशक के बाद कहानी शिल्प में परिवर्तन दिखाई देता है। इस समय लिखी गई कहानियों में 'मै' और 'वह' जैसे पात्र छोड़कर आज की स्थिति ही उत्पन्न है। इन कहानियों को समझने के लिए युगीन संवेदना और चेतना को समझने की जरूरत है जिनके भीतर से यह कहानी स्वतः निकली है।

आज की कहानी में शिल्प के अनेक रूप दिखाई पड़ते है - कहीं शिल्प की सतर्कता है और कहीं शिथिलता। मिथलेश्वर की बहुत सी कहानियाँ सपाट है तो शिवमूर्ति की कहानियों में शिल्प की सतर्कता है, 'कसाई बाड़ा', 'भरतनाट्यम्' में इसे देखा जा सकता है। भाषा का सायास प्रयोग मृणाल

पाण्डे की रचनाओं में मिलता है। भाषा का एक दूसरा इस्तेमाल राजी सेठ की कहानियों में है। भाषा के प्रयोग में मृदुला गर्ग, मंजुल भगत, चित्रा मुद्गल जैसी लेखिकाएँ कुशल है।

1.1 शिल्प अर्थ और परिभाषा :

शिल्प शब्द का शाब्दिक अर्थ, कारीगर, हुनर तथा कला है। संस्कृत कोश में शिल्प शील+प) को मूर्तिकला), कारीगर, हुनर कहा गया है।[1] दूसरे संस्कृत शब्दकोश में - शिल्पम् शब्द का अर्थ पक्) कारीगर-शिल), क्राफ्ट आदि दिया गया है। शिल्प विधान शब्द अँग्रेजी के craft शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है जिसका अर्थ है - ढंग, विधान या तरीका। तकनीक या कलात्मक साधन : जिसे अँग्रेजी में 'Technological or artistic meaning' कहते हैं। शैली शब्द अँग्रेजी के 'Technique' शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है।

आक्सफोर्ड डिक्शनरी में शिल्प का अर्थ इस प्रकार दिया गाय है –"कलात्मक कार्यविधि की वह पद्धति जो संगीत अथवा चित्रकला मे प्राप्य है।"[2] बृहद हिन्दी कोश में शिल्प शब्द की व्याख्या इस प्रकार है - "किसी चीज को बचाने या रखने का ढंग अथवा तरीका। किसी वस्तु के रचने की जो-जो विधियाँ अथवा प्रतिक्रियाएँ है, उनके समुच्चय को ही शिल्प - विधि के नाम से पुकारा जाता है।"[3]

डॉ॰ लक्ष्मी नारायण लाल तकनीक का अर्थ स्पष्ट करते हुये लिखते हैं - **"ढंग, विधान, तरीका जिसके माध्यम से किसी लक्ष्य की पूर्ति की गई हो।"[4]**

कुछ विद्वानों ने शिल्प और शैली को एक ही माना है परंतु दोनों का अर्थ भिन्न है। हालाँकि कुछ विद्वानों ने टेकनीक का हिन्दी पर्याय शिल्प माना हैं जो भ्रम की स्थिति पैदा करती है। शिल्प और शैली में बहुत बड़ा अंतर है - शिल्प से किसी रचना के कौशल का बोध होता है। **आप्टे के शब्दों में शिल्प - "किसी भी कला में कौशल, कार्य, सृजन आदि को भी शिल्प के अर्थों में स्वीकार किया है।"**

---

[1] Gode & C.L.Karve : Sanskrit - English dictionary, page 154

[2] ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, पृ॰ 12-48

[3] ज्ञान मण्डल : बृहद हिन्दी कोश, पृ॰ 1239

[4] लाल, डॉ॰ लक्ष्मी नारायण.(1996), हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास, पृ॰ 2

शैली - "शैली रचनाकर के भावों व विचारों की अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण और सशक्त माध्यम है जिससे एक रचनाकर की कुशलता का स्पष्ट परिचय मिलता है। "

शिल्प को अन्य नामों से भी जाना जाता है। वह शिल्प के समानार्थक या पर्याय शब्द कहे जा सकते हैं - रचना विधान, रूप रचना, शिल्प विधान, रचना कौशल, काव्य सौन्दर्य, अभिव्यक्ति विधान, अभिव्यंजना सौन्दर्य इत्यादि।

शिल्प शब्द का शाब्दिक अर्थ विधान रीति या विधान के लिए प्रयुक्त होता है। वृहद हिन्दी कोश के अनुसार – "शिल्प से अभिप्राय हाथ से कोई वस्तु तैयार करने अथवा दस्तकारी या कारीगरी से है।"

शिल्प विधान का आशय एक रचनाकार का कौशल या तकनीक है जिसके माध्यम से वह रचना का निर्माण करता है। प्रत्येक रचनाकर की अपनी तकनीक होती है वह अपनी रचना के निर्माण से कलात्मक साधनों का प्रयोग करता है। वह अपने मन में उत्पन्न होने वाले विचारों या भावनाओं को प्रकट करने के लिए जिस तकनीक या माध्यम का प्रयोग करता है वह विधि ही शिल्प विधान कहलाती है। शिल्प किसी रचना की सजावट का माध्यम है। किसी भी रचना की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए रचनाकार शिल्प विधान का प्रयोग करता है। प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई शिल्प विधान की परिभाषा इस प्रकार है –

लक्ष्मी नारायण लाल कहानी की शिल्प विधि की चर्चा करते हुए लिखते हैं – "किसी भाव को निश्चित रूप देने के लिए जो विधान प्रस्तुत किए जाते हैं, वही उस कला की शिल्पविधि है। कहानी में जिस तरह अनुभूति उसके तत्वों में ढलती जाती है वहीं उसकी टेकनीक है। हर एक निश्चित लक्ष्य अथवा एकांत प्रभाव पूर्ति के लिए कहानी की रचना में एक विधनात्मक क्रिया उपस्थित करनी पड़ती है, वहीं उसकी शिल्पविधि है।" [5]

जैनेन्द्र शिल्प विधान को स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि – *"टेकनीक साहित्य सृजन में योग देने के लिए है।"*

[5] लाल, डॉ॰ लक्ष्मी नारायण.(1996), हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास, पृ॰ 3

इससे स्पष्ट है कि शिल्प का अर्थ रीति, विधि या विधान होता है। यानि साहित्यिक कृति या कलात्मक वस्तु के रचने का ढंग या तरीका। सरल भाषा में कहा जाय तो "शिल्प से अभिप्राय हाथ से कोई वस्तु तैयार करने अथवा दस्तकारी या कारीगरी से है।"[6] 'इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में शिल्प को कलात्मक निर्वाह की पद्धति बताया गया है।

वैसे शिल्प शब्द का प्रयोग हस्तकला के क्षेत्र में सदियों से होता आया है। इस क्षेत्र में पत्थर, लकड़ी, मिट्टी आदि से चीजें, बर्तन, गहने इत्यादि बनाये जाते हैं। ये चीजें जिस कौशल से बनायी जाती है, उसी से शिल्प शब्द का संबंध रहा है। साहित्य में जब से रचना कौशल यानि साहित्यिक सौंदर्य का विवेचन होने लगा, तब से इस क्षेत्र में इस शब्द का प्रयोग साहित्य में होने लगा। हस्तकला के क्षेत्र में इस शब्द का अर्थ साहित्यिक अर्थ से अलग है। साहित्यिक शिल्प लगातार परिवर्तित होता रहा है। साहित्यिक सृजन में जैसे-जैसे परिवर्तन होता गया, वैसे-वैसे इस साहित्यिक शिल्प का रूप भी बदलता गया। विषय वस्तु में समय के अनुसार बदलाव होता रहता है, इसीलिए साहित्यिक शिल्प किसी एक निश्चित रूप को लेकर स्थिर नहीं रहता, बल्कि लगातार परिवर्तित होता रहता है। यही कारण है कि साहित्य में शिल्प की चर्चा या विश्लेषण करते समय विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से उसे जाँचा-परखा और उसी के अनुरूप शिल्प की व्याख्या की हैं। यों भी शिल्प की कोई एक निश्चित व्याख्या संभव नहीं।

शिल्प का महत्त्व

साहित्य में वस्तुतत्त्व की भाँति कला और शिल्प का भी अपना विशिष्ट महत्त्व होता है। कोई साहित्यिक कृति वस्तु तथा विचारतत्व की वाहिका होते हुए एक कलात्मक इकाई भी होती है। मूलतः वह एक कलात्मक सृष्टि ही है, जो कलाकार की अपनी संवेदनाओं, अनुभवों तथा चिंतन को इस रूप में पाठकों तक संप्रेषित करती है कि पाठक सहज ही उससे एक तादात्मय का अनुभव करता हुआ इच्छित आनंद तथा संतोष प्राप्त करता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कला के आवरण में प्रस्तुत की गई संवेदनाएँ तथा विचार ही साहित्य को साहित्य बनाते हैं और उसे स्थायी महत्त्व भी प्रदान करते हैं। साहित्य के अंतर्गत कला और शिल्प दोनों कि अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

---

[6] ज्ञान मण्डल, बृहद हिन्दी कोश, पृ॰ 1334

साहित्य में शिल्प का स्थान क्या है और उसका महत्त्व कितना है, जैसे प्रश्नों के उत्तर जानने से ही 'शिल्प' के स्वरूप की पहचान हो सकेगी, भले ही प्राचीन भारतीय कला सूची मे साहित्य का नाम नदारद हो, पर अब यह मानने में संकोच नहीं करना चाहिए कि साहित्य एक कला है। अतः साहित्य और कला दोनों का घनिष्ठ संबंध है। इसीलिए साहित्य में शिल्प का स्थान जानने के पहले कला और साहित्य की चर्चा करना अनुचित न होगा।

कला और साहित्य

साहित्य में शब्द के माध्यम से अभिप्रेत का चित्रण होता है। शब्द कला का एक उपकरण है। अतः दोनों का घनिष्ठ संबंध है। डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "साहित्य में निहित जीवन और सृष्टि के विभिन्न रूप सुंदर हैं। वह सौन्दर्य निर्माता भी है और सौन्दर्य की सृष्टि भी। सारे मानव समाज को सुंदर बनाने की साधना का ही नाम साहित्य है।"[7]

साहित्य द्वारा सौन्दर्य की सृष्टि होती है क्योंकि साहित्यकार अपनी अभिव्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण कराने के लिए विभिन्न सौन्दर्य-उपकरण अपनाता है, और उन्हीं सौन्दर्य उपकरणों द्वारा साहित्य का निर्माण करता है। "कला मानव संस्कृति की उपज है। निसर्ग से युद्ध करते हुये मानव ने श्रेष्ठ संस्कार के रूप में जो कुछ सौन्दर्य-बोध प्राप्त किया, कला शब्द में उसका अंतर्भाव है।"[8] शब्दरूपी उपकरण से साहित्यकार वस्तु का चित्रण करता है, केवल भावनाएँ या अनुभूति से साहित्य श्रेष्ठ नहीं बनता। उसके लिए कलात्मक सौन्दर्य के माध्यम की आवश्यकता होती है।

प्रत्येक विधान में स्वरूप विधान का महत्त्व है। विषयवस्तु यदि प्राण है, तो स्वरूप विधान उसका शरीर। दोनों एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते। दोनों का अटूट संबंध है। कला अथवा साहित्य का आभार मनोभाव है और इसी कारण कला तथा साहित्य का भंडार अक्षय माना गया है। इस संबंध में मार्गरेट केरी ने कहा है – "सबसे पहली बात तो यह है कि कला की सामग्री अक्षय है, क्योंकि कला की सामग्री कोई भौतिक पदार्थ न होकर मनोभाव एवं अनुभूतियाँ है। कलाकार भौतिक पदार्थ का सृजन न कर, प्रतिकों के सहारे अनुभूतियों और मनोभावों को जगाता है।"[9]

---

[7] सुल्यान, डॉ॰ विश्वर, पंत काव्य में शिल्प और सौन्दर्य, पृ॰ 7

[8] वर्मा, डॉ॰ धीरेन्द्र. साहित्य कोश, भाग 1, पृ॰ 220

[9] Margaret willy joyce cary, The Artist experience, page. 35

प्रत्येक कला चाहे वह मूर्तिकला हो या चित्रकला हो, संगीत कला हो या नृत्य कला हो, काव्य कला हो या नाटक हो, अपने ढंग से कलाकार की अनुभूति की, मनोभावों की, अभिव्यक्ति करने का प्रयास करता है। युगानुसार मानव की अनुभूतियाँ मनोभावों आदि के बदलते रहने के कारण कला को नई विषय सामग्री मिलती है । इसीलिए कला का भंडार निःसीम है । कला का आविष्कार, नई सौन्दर्याभिव्यक्ति, साहित्य में होती ही है। साहित्य में शब्दों के माध्यम से ही सौन्दर्य को मूर्तिरूप मिलता है । शब्द और अर्थ के उचित सामंजस्य से ही साहित्य सुंदर बनता है । कलाकार अपनी कल्पना, संवेदना, अनुभूति का शब्दों के कुशल प्रयोग से पाठक को सौंदर्यानुभूति देता है। कुशल प्रयोग का यही रूप शिल्प है। साहित्य की विविध विधाओं में शिल्प का रूप अलग-अलग होता है। एक जैसा नहीं। जैसे - नाटक, कहानी, आदि के अपने अपने विविष्ट रूप कला विषयक सिद्धान्त तथा मूल्य हैं, इसीलिए कहानी का शिल्प नाटक के शिल्प से भिन्न है और नाटक का शिल्प कहानी के शिल्प से भिन्न है। इससे स्पष्ट है कि शिल्प भी एक विधा विशेष है। साहित्य की सभी विधाओं में 'शिल्प' का महत्त्व है।

कला और शिल्प

यों तो बहुत से समीक्षकों ने कला और शिल्प दोनों को एक माना है, फिर भी दोनों में पर्याप्त अंतर है। कला शब्द किसी विधा के नियम को ध्वनि देता है, जबकि शिल्प कृति के आंतरिक सृजन की प्रक्रिया है। अतएव कला का क्षेत्र विस्तृत है तो शिल्प का सीमित। शिल्प अनेक प्रकार का हो सकता है, किन्तु कला केवल एक ही होती है। कला की सुरक्षा के लिए कलाकार को सावधान रहना होता है और नियमों के अधीन होने के कारण कभी-कभी अपनी बात उपयुक्त ढंग से नहीं कह पाता। कला की संपृक्ति पूरी एक विधा से होने के कारण उसमें प्रयोग की संभावना कम रहती है पर शिल्प का संबंध किसी कृति विशेष से होने के कारण प्रयोग की संभावनाएँ अन्नत होती है । शिल्प कला के मूल्यांकन का आधार है पर कला शिल्प को कभी मूल्यांकित नहीं कर सकती। शिल्प की अपनी पृथक कला हो सकती है, किन्तु पूरी विधा की कला शिल्प में नहीं आ सकती।

1.2 साहित्य का स्वरूप और उसमें शिल्प का स्थान

पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि साहित्य एक कला है और कला की सृष्टि का मूल स्वर अभिव्यक्ति है। साहित्यकार अपनी मनोगत भावनाओं की अभिव्यक्ति इस ढंग से करता है कि वह सौंदर्य से युक्त हो। अपनी अनुभूति को सुंदर बनाने के लिए ही कलाकार विविध ढंग, तरीके विधियाँ अपनाता है। यही कलात्मक प्रयास 'शिल्प' कहलाता है। अनुभूति तभी कलात्मक बनती है जब रचनाकार उसे अपनी सर्जनातमक प्रतिभा से शिल्पगत करता है। अनुभूति और शिल्प का संबंध बताते हुए 'श्री विलियम जान ओ कानर' अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि – "**कोरी अनुभूति और रूपायित अनुभूति या कला में अंतर शिल्प के कारण ही है।**"[10]

वे साहित्य के बाह्य रूप को महत्त्व देते हुए उसके रूप की परिभाषा इस प्रकार देते है - रूप तो विचार का बाहरी परिधान है, इसलिए यह रूप जितना ही विचारानुकूल होगा उतना ही यह उत्कृष्ट माना जाएगा। अर्थात बाह्य कलेवर से ही विचार एवं मनोभावों को मूर्तरूप मिल पाता है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही मनुष्य सौंदर्यान्वेषी रहा है। साहित्य में वह अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। यही प्रयास उसे मौलिक प्रयोग के लिए प्रेरित करता है। इस प्रयास में वह विविध उपकरण तथा ढंग अपनाता है। यही सब 'शिल्प' के अंतर्गत आता है। अतः शिल्प वह कुशलता है, जिससे किसी वस्तु या कृति में सौंदर्य की उत्पत्ति होती है। इस संदर्भ में श्री केनेथ मेकनिकोल ने भी लगभग एसे ही विचार व्यक्त किए है।

अनुभूति को सुंदर बनाना एक कला है। यह कलात्मक रूप देने का काम शिल्प के द्वारा ही होता है। डॉ॰ कैलाश वाजपेयी इसके बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं - "शिल्प में वस्तु (विषय और अनुभूति) की अभिव्यक्ति होती है। अपनी कलाकृति में कलात्मक साक्षात्कार किये गए सौंदर्य तथा (भावपरक) सत्य को न केवल अभिव्यक्ति करना चाहता है अपितु उसे इस तरह अभिव्यक्त करना चाहता है कि वह एक सम्पूर्ण, सफल, सार्थक तथा सुंदर कलाकृति बने। इसके लिए अपनाए गए सभी विधान, व्यवस्थाएँ, विधियाँ, आयास-प्रयास, रूप-गठन, रूप-यौजनाएँ शिल्प में सम्मिलित हैं।"[11]

---

[10] Willian van O'Conner, Form of Fiction, page. 9

[11] वाजपेयी, (डॉ॰) कैलाश, आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृ॰ 19

इससे स्पष्ट है कि शिल्प कलात्मक सौंदर्य ही नहीं कलात्मक सौंदर्य की प्रक्रिया भी है। शिल्प का संबंध किसी भी वस्तु या कृति के निर्माण से ही है। वस्तु प्राकृतिक हो या मानव निर्मित, उसमें शिल्प का होना नितांत आवश्यक है। रचना में तो घटनाओं या प्रसंगो की सजावट शिल्प के द्वारा ही की जाती है। अतः रचना प्रक्रिया को जिन उपकरणों से सजाकर सुंदर बनाया जाता है, वही रचना का शिल्प है। दूसरे शब्दों में, अपनी मनोगत भावनाओं को रूपायित करने के लिए कलाकार जो विधि, ढंग या तरीका अपनाता है, वहीं रूपयान विधि उस कला की शिल्प विधि है।

हस्तकला के क्षेत्र में 'शिल्प' शब्द का अर्थ और साहित्यिक क्षेत्र में शिल्प का अर्थ एक जैसा नहीं है। शिल्पकार लकड़ी, लोहे आदि से अपनी कुशलता से सुंदर वस्तुएँ बनाता है। यहाँ साधन और साध्य एक दूसरे के साथ संबंध होकर भी दोनों एक दूसरे से अलग है। उदाहरण के लिए कहें तो जिन औजारों अथवा लोहे या लकड़ी, से वस्तु बनाई जाती है, वह औज़ार और उससे निर्मित वस्तु से अलग या पृथक है, पर साहित्य कला में ऐसा अलगाव नहीं होता। वैसे तो शिल्पकार अपने मन में एक निश्चित रूप बनाकर ही वस्तु का निर्माण करता है, पर कलाकार के पास भले ही कोई निश्चय हो, परन्तु निर्माण की प्रक्रिया में ही उसका रूप निश्चित होता है। यानि कला में रूप का निश्चय पहले नहीं होता। वह रूपयान सहज है पर आकस्मिक नहीं। वह मौलिक होता है, फिर भी परंपरागत सूत्रों से भी जुड़ा रहता है।

कोरे शिल्प में तथा रूप और वस्तु में, भेद होता है, पर कला शिल्प में कला और रूप की समन्वित इकाई होती है। रूप और वस्तु के सामंजस्य से ही कृति में सजीवता आती है। वस्तु और रूप को एक-दूसरे से अलग ही नहीं किया जा सकता। शिल्पकार के मन में जो रूप होता है, वह उसे वस्तु पर आरोपित करता है। यहाँ आरोपित की गई वस्तु बदली जा सकती है, पर कला में ऐसा नहीं होता। दरअसल रूप और वस्तु में यहाँ भेद नहीं है। इसी विचार को व्यक्त करते हुए रोजर एस॰ बाशफील्ड कहते हैं - "रूप को वस्तु से अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि रूप के बिना वस्तु क्या है ? जब तक वस्तु को भाषा, रंग, शब्द, आकार या रचना जैसे किसी प्रेषणीय रूप में अनुवादित न किया जाए , तब तक दर्शक या श्रोता उसे समझ कैसे सकते हैं ? जिन्होंने उसे पढ़ा है, उसे उसके रूप में देखा है, उनके लिए वह सब कुछ है, जिन्होंने उसे कभी नहीं देखा है, उनके लिए कुछ भी नहीं है।"[12]

---

[12] कुमार, (डॉ॰) सिद्धनाथ, हिन्दी एकांकी की शिल्प विधि का विकास, पृ॰ 42

दूसरे विचारक पर्सी लब्बक भी इस मत का समर्थन करते हैं। सुगठित कृति में मन, विषय और रूप एकाकार तथा अभिन्न हो जाते हैं। विषय या शिल्प दोनों का समान महत्त्व है।

कलाकार अपनी प्रतिभा से ही शिल्प का सृजन करता है पर शिल्पकार अपने प्रयास से ही रूप देता है। साहित्यिक शिल्प भले ही हस्तकला के क्षेत्र के शिल्प से अलग हो, लेकिन यह स्वीकार करना होगा कि मानव – निर्मित वस्तुएँ सदैव शिल्प युक्त है। शिल्प किसी कृति को अभिव्यक्त करने के लिए उचित शिल्प को अपनाने का प्रयास करता रहता है। प्रबल से प्रबल मानव वस्तु की अभिव्यक्ति सुगठित शिल्प द्वारा ही हो सकती है। इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य में शिल्प का अर्थ हस्तकला में प्रयुक्त किए गए शब्द के अर्थ से अलग है। अतः साहित्य में शिल्प क्या है, उसकी विशेषता क्या है, यह जानना नितांत आवश्यक है।

1.3 साहित्य में शिल्प का अर्थ और उसकी विशेषताएँ

साहित्य में शिल्प का अर्थ व्यापक है। कला का भण्डार नि:सीम है , क्योंकि मानव की अनुभूतियाँ सदैव एक जैसी नहीं रहती। समय के साथ-साथ भाव बदलते रहते हैं और कला को अनेक विषय तथा सामग्री मिलती रहती है। विभिन्न विषयों के कारण शिल्प में भी परिवर्तन होता रहा है।

इससे स्पष्ट होता है कि शिल्प गतिशील है - यानि शिल्प का विकास के कारण शिल्प का विकास होता रहा है। शिल्प सहज है। प्रतिभाशाली कलाकार कभी भी निश्चय करके सृजन नहीं करता। इस संबंध मे कोलरिज का मत है – "इसके विपरीत रचनात्मक का रूप बड़ा स्वाभाविक होता है – जैसे-जैसे वस्तु विकसित होती है, वैसे-वैसे वह भीतर से आकार ग्रहण करती है और बाह्य रूप की पूर्णता के साथ उसका विकास पूर्णतः एकरूप एवं एकाकार हो जाता है।" शिल्प कलात्मक अभिव्यक्ति का एक साधन है। क्योंकि अनुभूति को, सुंदर बनाकर सजीव बनाना ही 'शिल्प' का उद्देश्य है। शिल्प सज्जा अलंकार है। उसी के द्वारा विषय-वस्तु पाठक तक संप्रेषित होती है। अतः सम्प्रेषण का पर्याय है। शिल्प ही विषय की खोज, जाँच और विकास करने का एक मात्र साधन है। शिल्प विधि एक माध्यम है जिससे रचनाकार कथ्य को रखता है। क्योंकि साहित्यकार रचना का मूलाधार मनोभाव है और साहित्यकार इसी मनोभावना को दूसरों तक अधिक से अधिक पहुँचाने का प्रयास करता है।

लेखक अपनी रचना में अपनी मानसिकता, अपनी सोच और अपनी दृष्टि को ही शिल्पगत करता है। कृति के कथ्य, वातवरण और वस्तु को उभारने में ही शिल्प का उपयोग होता है

और यह कार्य भाषा शिल्प करता है। रचना का उद्देश्य कथ्य को संप्रेषित करना होता है और कथ्य अथवा वस्तु की यह अभिव्यक्ति भाषा शिल्प के द्वारा ही होती है। रचनाकार अपनी कृति को सार्थक बनाने के लिए वस्तु और विधा के अनुकूल भाषा-शिल्प का संतुलन स्थापित करके अपनी रचना वैशिष्ट्य के साथ पाठक को भी प्रभावित करता है। केवल अनुभूति और प्रयत्न रचना नहीं बन सकते। दरअसल अनुभूति सप्राणता, एकता, मूल्यवत्ता और अंतर्निहित निर्देशन क्षमता रचना को संप्रेषित करते हैं। इसके लिए यानि अनुभूति रूपायित करने के लिए जो विधि, ढंग या पद्धति अपनाता है, वही रूपयान विधि 'शिल्प विधि' है।

वैसे तो शिल्प सायास है, उसे बनाना पड़ता है। वह कलाकार के प्रयास का परिणाम है, वह कला-सौन्दर्य का उपकरण है और उसी उपकरण के द्वारा रचनाकार अव्यक्त की अभिव्यक्ति या अभिव्यंजना करता है। साहित्य में अभिव्यक्ति या अभिव्यंजना करता है। साहित्य में अभिव्यंजना ही सब कुछ है और शिल्प ही अभिव्यक्ति को श्रेष्ठ कृति बनाती है। साहित्य में जब तक अभिव्यक्ति का महत्त्व रहेगा, तब तक शिल्प का भी महत्त्व रहेगा।

किसी भी कलात्मक निर्मिति में शिल्प का विषय से घनिष्ठ संबंध होता है। वैसे तो शिल्प का अस्तित्व ही विषय सापेक्ष है। विषय विहीन शिल्प की कल्पना नहीं की जा सकती। प्रभावकारी और श्रेष्ठ कृति के लिए विषय या वस्तु के अनुरूप शिल्प होना चाहिए। रचना का बाहरी रूप जितना सुंदर बनेगा, उसी के अनुरूप मनोभावों में सम्प्रेषण की क्षमता होगी। कथ्य रचना का प्राण है तो शिल्प उसका शरीर।

सशक्त रचना के लिए भाव और शिल्प दोनों का संतुलन आवश्यक है। इसीलिए कलाकार हमेशा विषय के अनुरूप शिल्प निर्धारण करने का यत्न करता रहता है। विषय वस्तु और शिल्प दोनों को अलग-अलग रूप में देखना ही असंभव है। शिल्प साहित्य कृति की रचना-प्रक्रिया है। उसका मुख्य प्रयोजन बाह्य कृति का निर्माण ही करना है। 'शिल्प' ही कृति को सुंदर रूप देता है। भाववस्तु कहानी का आंतरिक पक्ष है और शिल्प विधान बाह्य पक्ष है। यह कहना गलत नहीं कि कहानी के सृजन की पूरी प्रक्रिया ही उसका शिल्प विधान है। शिल्प विधि का सीधा संबंध विषय वस्तु के कलापक्ष से ही होता है। मनोभावों का रूपयान ही शिल्प है।

किसी भी विधि की जीवन्तता के लिए युग के अनुरूप उस विधि में परिवर्तन होना आवश्यक है। इस दृष्टि से देखा जाय तो शिल्प एक विकासमान प्रक्रिया है। हर रचनाकार अपनी आवश्यकतानुसार फार्म(रूप) का सृजन करता है। सच्चे – कलाकार की कसौटी यही है कि वह नए विषय के साथ अपनी विधि को भी बदले। साहित्य कि किसी भी विधि का शिल्प स्थायी नहीं होता, पर इसमें ऐसे तत्त्व होते हैं जो हमेशा स्थायी होते हैं। शिल्प समय एवं परिस्थिति के अनुसार विकसित होता रहता है। रचनाकार अपनी सुविधा अनुसार रचना की प्रकृति के अनुरूप शिल्प अभिव्यक्ति का रूप निश्चित करता है। वैसे तो रचनाकार किसी ढांचे या नियमों से बंधा नहीं रहता। समर्थ कलाकार नए भाव बोध तथा नए सौंदर्य - बोध को प्रस्तुत करने के लिए सृजन का नवीन ढाँचा निर्मित करता है। नवीन कथ्य का प्रवर्तन ही शिल्प परिवर्तन का सबसे मुख्य कारण है।

इससे स्पष्ट होता है कि युग के अनुरूप नये-नये विषय की खोज और तदानुसार नए शिल्प को अपनाना पड़ता है। अतः हर युग के अलग-अलग संदर्भ और विषय होते हैं। इसी कारण सामाजिक बदलाव होता रहता है। इस परिवर्तन के साथ-साथ शिल्प में भी परिवर्तन होता रहता है। आधुनिक युग की जटिलता, यांत्रिकता, तटस्थता तथा संघर्षमयता ने कहानी शिल्प को प्रभावित किया है और नए भाव बोध को वहाँ करने वाले शिल्प में भी निरंतर प्रयोग हो रहे हैं। जीवन मूल्यों के परिवर्तन के साथ-साथ शिल्प परिवर्तन होता रहता है।

शिल्प कोई निश्चित ढाँचा नहीं जिसमें विषय को फिट किया जा सके। नए विषय युगानुरूप नए शिल्प की मांग करते हैं। इसी कारण प्रत्येक युग में नई परिस्थिति में नये शिल्प रूप का जन्म होता है या प्रचलित रूपों में परिवर्तन और संशोधित होता है जिससे वे युग के समाज सम्बन्धों तथा वस्तु सत्य को समग्र रूप में प्रतिबंधित कर सके। इससे स्पष्ट होता है कि शिल्प निरंतर बदलने वाली, नये रूप के साथ प्रस्तुत होने वाली प्रक्रिया है। अनुभूति को सफलता से अभिव्यक्त करना ही शिल्प का काम है। शिल्प से ही घटनाएँ, विचार, मनोभाव आदि को आकार रूप मिलता है।

शिल्प अभिव्यक्ति का एक माध्यम है, जिसके द्वारा रचनाकार अमूर्त भाव या अनुभूति को मूर्त रूप या स्थूल रूप प्रदान करने का प्रयास करता रहता है। कलात्मक सृजन में शिल्प होता ही है। उचित शिल्प के बिना वह रचना न ही श्रेष्ठ बन सकती है और न ही प्रभावकारी। शिल्प के संबंध में डॉ० त्रिभुवन सिंह का मत समीचीन है - "उपन्यासों में अभिव्यक्ति पाने वाले जितने प्रसंग व्यक्ति अथवा समाज होते हैं उनका अस्तित्त्व ही समाज हो जाय, यदि शिल्प न हो। इसके अभाव में तो कृति हवाई

किला बनकर रह जाएगी। कल्पना और यथार्थ के भेद को समाप्त करने का काम शिल्प ही करता है। जिसके माध्यम से अभिप्रेत भावों अथवा उद्देश्य का रूपान्तरण संभव होता है।"[13] इतना ही नहीं, अपनी अभिव्यक्ति को सफलतापूर्वक प्रस्तुत करने के लिए साहित्यकार सदैव अपने शिल्प को अधिकाधिक कुशल एवं पूर्ण बनाने के प्रयास में रहता है। इसीलिए अपनी कृति को पूर्ण बनाने के लिए वह अनिवार्य रूप से अपने शिल्प का विकास करता रहता है। कृतिकार शिल्प के द्वारा ही कृति में उत्कृष्टता लाने में समर्थ हो पाता है। प्रतिभा के साथ-साथ कुशल शिल्प का होना भी अति आवश्यक है। इसीलिए रचनाकार अपने लिए शिल्प को अधिकाधिक विकसित करने में प्रयत्नशील रहता है।

शिल्प की विभिन्नता के कारण एक ही विषय वस्तु के अनेक रूप मिल सकते हैं - जैसे विधागत नाटक, कहानी , महाकाव्य आदि। इससे ज्ञात होता है कि विषय वस्तु से ज्यादा शिल्प का मूल्य है। विषय वस्तु को कलात्मक रूप देकर उत्कृष्ट रचना का सृजन करने के लिए निश्चित रूप से शिल्प की अनिवार्यता महसूस होती है। शिल्प - एक विशिष्ट प्रणाली, अंगचेष्टा या प्रतीक है, एक उचित ढंग, उपकरण या निर्माण प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कलाकार की कोरी अनुभूति अलंकृत होकर अमूर्त हो जाती है। अनेक विद्वानों ने 'शिल्प' की परिभाषा करते समय अलग-अलग शब्दों से उसका उल्लेख किया है। 'शिल्प' शब्द के लिए प्रविधि, प्रणाली, प्रक्रिया, रूप आदि अनेक शब्दों का प्रयोग भारतीय विद्वानों ने किया है। उसी तरह पाश्चात्य आलोचकों ने फॉम, स्ट्रक्चर, टेकनीक, सेंटिंग जैसे अनेक शब्दों को 'शिल्प' के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया है। लेकिन इनमें से किसी भी शब्द द्वारा 'शिल्प' का मौलिक अर्थ वहाँ नहीं होता। 'शिल्प' शब्द की व्यापकता या विस्तार इतना है कि ये सारे शब्द शिल्प के समीप है पर पर्याय नहीं। 'शिल्प' से संबन्धित अँग्रेजी के इन पर्यायवाची शब्दों से शिल्प का आंशिक स्वरूप ही प्रकट होता है। अतः इन शब्दों में अव्याप्ति दोष लक्षित होता है।

कहानी शिल्प के बारे में श्री अमृतलाल नगर की मान्यता इस प्रकार है - कहानी की भाषा सहज, बोधगम्य होनी चाहिए, क्योंकि उसके पाठकों का मानसिक स्तर समान नहीं होता है। यदि कहानी की भाषा इसके विपरीत है तो कहानी से न तो पाठक का मनोरंजन होगा और न उनका लेखक की भावनाओं से तदात्मय। इस स्थिति में कहानीकार अपना कथ्य पाठकों तक पहुँचाने में असफल हो जाता है और किसी किसी पाठक द्वारा उसे असफल लेखक की संज्ञा भी मिल जाती है।

---

[13] सिंह, (डॉ॰) त्रिभुवन. हिन्दी उपन्यास परंपरा और प्रयोग, पृ॰ 22

शरत् और प्रेमचंद की कहानियों की लोकप्रियता का कारण उनकी भाषा है, जिसका रूप सामान्य जनता की भाषा के बहुत निकट है। कदाचित् इसी कारण ये कहानीकार अब भी बहुत पढ़े जाते हैं। यद्यपि भाषा का कलेवर विषयवस्तु पर निर्भर होता है, फिर भी भाषा का स्तर कहीं-कहीं सामान्य पाठकों के स्तर से ऊँचा रह जाता है। इसका कारण देशकाल और वातावरण का चित्रण होता है। इसी से भाषा में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, ग्रामीण अथवा आधुनिक विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग होता है और भाषा का रूप जटिल हो जाता है। इस स्थिति में पाठक को धैर्य से काम लेना चाहिए क्योंकि कहानीकार की भी अपनी सीमाएँ हैं जिनका निर्वाह आवश्यक होता है। ऐसे प्रसंगों में शैली से काम लिया जाता है। शैली कहानी की आत्मा होती है। इसी के सहारे कहानी में विश्वसनीयता और रोचकता आती है, जिसके सहारे पाठक लेखक की भावनाओं का स्पर्श करता है और रसदशा को प्राप्त होता है।

1.4 कहानी के तत्व

आज कहानी को कथानक , चरित्र एवं शिल्प की स्थूल शैलिप्क संज्ञाओं में नहीं जकड़ा जा सकता है। कहानी आधुनिक जीवन को व्यक्त करने वाली सर्वसमावेशी विधा हो गई है। घटनाओं का संकलन, कहानियों में कथातत्व स्वातंत्रयोत्तर नहीं है। कहानी की मूल संवेदना को स्पष्ट करने में एक और वातावरण की सार्थकता है तो दूसरी ओर कथ्य एवं शिल्प को जोड़ने वाली भाषा का। कथानक संगठन, चरित्र एवं भाषिक संरचना को लेकर कहानियों में नित नए-नए प्रयोग हो रहे है जो कहानी के विकास को दिशा दिखाते है। इस तरह कहानी के शिल्पविधि में लक्ष्य और अनुभूति का सबसे मुख्य तत्व है। इन्हीं के प्रकाश से कहानी के विधान में कथावस्तु की चेतना, चरित्र अवतारण और शैली का निर्माण होता है।

'शिल्पविधि में कहानी के भावपक्ष का कोई निरपेक्ष स्थान नहीं निर्धारित किया जा सकता। इसका सम्बन्ध अनुभूति और लक्ष्य तत्व से है। कहानी में भाव पक्ष की ओर भी प्रकाश डाला जाता है परन्तु शिल्पविधि के अंतर्गत कहानी का कलापक्ष ही मुख्य रूप से आता है।'[14]

[14] लाल, (डॉ॰) लक्ष्मी नारायण.(1996), हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास

कहानी में शिल्पविधान(कलापक्ष) को कहानी के छः तत्वों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है -

1. कथावस्तु कथानक /
2. पात्र और चरित्रचित्रण-
3. कथोपकथन और संवाद योजना
4. वातावरण
5. भाषा शैली-
6. उद्देश्य

(1) कथानक / कथावस्तु

कथानक अंग्रेजी के 'प्लाट' शब्द का हिंदी रूपांतरण है। कथानक में गतिशील घटनाएँ सीधी रेखा में नहीं चलती। उनमें उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। कथानक में जीवन के गतिमान संघर्षशील रूप की अवतारणा की जाती है। कथानक कला का वह साधन है, जिसमे जीवन की प्रत्ययजनक यथार्थता के साथ उसमे आकस्मिता का तत्व भी विद्यमान होना आवश्यक है। इसी कारण उसमे भावोत्त्जना का निर्माण होता है।

कथानक कहानी का बहुत महत्वपूर्ण अंग है। कहानी का कथानक ऐसा होना चाहिए जो पाठकों को उससे बांधकर रख सके, यद्यपि कहानी में कथानक का ह्रास है तो वह कहानी, कहानी नहीं कही जा सकती। वह संस्मरण, रेखाचित्र, निबंध, रिपोर्ताज इत्यादि हो सकती है। कथानाक कहानी का मूल होता है। कथानक के बिना कहानी की कल्पना नहीं की जा सकती। देखा जाये तो कहानी के आरम्भ काल से ही कथानक कहानी की मेरुदंड रही परन्तु जैसे-जैसे कहानी का विकास होता गया वैसे-वैसे कथानक का कहानी में मुख्य स्थान न होकर गौण हो गया। कहानी में मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों और मनोविश्लेषण प्रवृत्तियों के स्थान लेने से कथानक का स्थान अत्यंत सूक्ष्म हो गया है।

कहानीकार के अनुभव और प्रेरणा के आधार पर कथानक का निर्माण होता है। कथानक का रूप कहानी में तब मुख्य होता है जब उसमे अनुभूतियां, घटनाएँ अथवा कार्य व्यापर श्रृंखला से निर्मित हुई हों। जिसके कारण कथानक का पूर्ण रूप से विस्तार और उसमे कोई परिवर्तन नहीं

होता है परन्तु जब अनुभूतियों का प्रादुर्भाव हमारी मनोवैज्ञानिक सत्यता अथवा अंतर्द्वंद और मनोविश्लेषण के धरातल से हुआ हो तब कथानक का रूप कहानी में अत्यंत सूक्ष्म और गौण होगा। आधुनिक कहानी कला में कथानक का ह्रास होता है लेकिन वहां पर कहानी पात्रों और परिस्थितयों के चित्रण से कहानी का वर्णन किया जाता है। किन्तु फिर भी कहानी का स्तर व्यापक नहीं हो पाता इसलिए कहानीकार को किसी न किसी रूप में कथावस्तु का सहारा लेना पड़ता है। "शिल्प की प्रमुखता बढ़ने से कहानी की प्रमुखता भी बढ़ी है। वास्तव में शिल्प रूप अपनी स्थिति के लिए 'तत्व' - कन्टेन्ट पर निर्भर रहता है और तत्व प्रकट होने की प्रक्रिया में रूप को निर्धारित और विकसित करता है।" [15]

जार्ज लूकाच के अनुसार "समाज महान कला का लक्ष्य यथार्थ की ऐसी छवि प्रदान करना है जिसमें आभास और सत् , विशेष और सामान्य अव्यवहृत और अवधारणात्मक आदि के बीच के अंतर्विरोध को इस प्रकार सुलझा दिया जाए कि दोनों कलाकृति की प्रत्यक्ष छवि में एक अभिन्न अखंडता (वस्तु + रूप) का भाव अपनी कलात्मकता में प्रस्तुत करें।"[16]

क्रमिक विकास की दृष्टि से कहानी में निम्नलिखित पाँच अवस्थाएँ मानी गई है –

1. प्रारम्भ
2. आरोह
3. चरम स्थिति
4. अवरोह तथा ,
5. अंत या उपसंहार

'किन्तु आधुनिक कहानी में वस्तु-विन्यास की दृष्टि से कथानक के तीन अंग होते है'[17] –

1. आरम्भ
2. मध्य
3. चरमसीमा अथवा अंत

---

[15] मुक्तिबोध, नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध, पृ॰ 104

[16] लूकाच, जार्ज. अलोचना, अंक 18, पृ॰ 33

[17] लाल, (डॉ॰) लक्ष्मी नारायण, (1996), हिंदी कहानियों की शिल्प विधि का विकास, पृ॰ 221

आरम्भ

आरम्भ कहानी का आदि भाग है। कहानी का आरम्भ कौतूहलपूर्ण होना चाहिए। नाटकीय वार्तालाप, मनोरम प्राकृतिक चित्र विधान या चमत्कारपूर्ण परिचय पाठकों की जिज्ञासा को जगाता है। इतिवृतात्मक आरम्भ कहानी के सौन्दर्य में बाधा उत्पन्न करता है। उत्कृष्ट कहानी के कथानक के आरम्भ अंश में आकर्षण की प्रतिष्ठा उसकी प्राथमिक आवश्यकता है। कहानी की मुख्य संवेदना और उद्देश्य इसी भाग में सन्निहित होती है। आकर्षण और लक्ष्य दोनों दृष्टियों से यह अंतिम विशेषता वस्तु विन्यास की सबसे बड़ी अपेक्षा है।

मध्य

कथानक के मध्य भाग में समस्या का पूर्ण रूप से विस्तार स्पष्ट हो जाता है। सम्पूर्ण अंग में विस्तार ही कथानक का मुख्य अंग है। इसी अंग में कहानी की वास्तविक आत्मा भी प्रस्फुटित होती है और कहानी के लक्ष्य की पृष्ठभूमि इसी भाग में तैयार होती है। **"रचना विधान की दृष्टि से वस्तु-विकास का मध्य भाग ही कहानी का विकास-भाग है और विकास भाग कहानी का मूल शरीर है।"**[18] कलात्मक दृष्टि से कहानीकार को विकास का उतना ही विस्तार करना चाहिए जितना की आवश्यक हो। कहानी का मध्य भाग बहुत महत्वपूर्ण होता है। पाठक का चित्त, जिज्ञासा, कौतूहल, उहापोह एवं असमंजसता की स्थिति में होता है की आगे क्या होने वाला है ? इस स्थान पर आकर प्रभाव घनीभूत होता है, जिसके कारण कहानी की गति की तीव्रता आती है। इसके पश्चात् ही कथानक अंत की और अग्रसर होता है चरमसीमा वह स्थल है –जहाँ कहानी का मूल भाव प्रतिपादित हो।

चरमसीमा अथवा अंत

आरम्भ की भांति कहानी का अंत भी प्रभावशाली होना चाहिए। कहानियों में कौतूहल का आविर्भाव अनेक अंगों पर होता है परन्तु जैसे-जैसे कहानी अपनी चरमसीमा पर पहुँचती है कौतूहल में तीव्रता बढ़ती जाती है। यद्यपि कहानी के कौतूहल में तीव्रता नहीं होगी तो कहानी सफल नहीं मानी जाएगी। कहानी के आरम्भ में पहला कौतूहल उत्सुकता की सृष्टि करता हुआ चरमसीमा की ओर प्रेरित करता है। इसी प्रकार दूसरा और तीसरा कौतूहल अपने चरमसीमा तक पहुँचने के पूर्व गति में तीव्रता

---

[18] लाल, (डॉ॰) लक्ष्मी नारायण, (1996), हिंदी कहानियों की शिल्प विधि का विकास, पृ॰ 221

बढ़ती रहती है। जिसके कारण कहानी में भाव और अनुभूतियों इतनी तीव्र हो जाती है कि कहानी बहुत ही व्यापक सिद्ध होने लगती है। अर्थात इस भाग पर आकर कहानी का सम्पूर्ण अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है। कहानी का पूर्ण कार्य और उद्देश्य इस चरमसीमा पर आकर समाप्त हो जाता है। तथा इस के साथ ही पाठकों की जिज्ञासा का अंत होता है।

(2) पात्र और चरित्र-चित्रण

साहित्य के केंद्र में मनुष्य है। मनुष्य के द्वारा ही समाज का निर्माण होता है। कहानी में पात्र या चरित्र-चित्रण बहुत महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। **'पात्र कथावस्तु के सजीव संचालक है।'** [19] जिनसे एक ओर कथावस्तु का आरम्भ, विकास और अंत होता है तो दूसरी ओर पाठक कहानी से आत्मीयता प्राप्त करते है। पात्र लेखक की कल्पना ही होते है परन्तु फिर भी वह लेखक के हाथ की कठपुतली न होकर उनका स्वतंत्र अस्तित्व होता है। पात्र काल्पनिक होते हुए भी सजीव और स्वाभाविक लगने चाहिए क्योंकि उनकी अवधारणा लेखक की अनुभूति पर आधारित होती है। पात्र भी हमारे जैसे जीते-जागते, हँसते-रोते, उत्थान-पतन की राह पर चलते दिखाई देने चाहिए तभी पात्र और पाठक का आत्मीय सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। पात्र गढ़े हुए पत्थर की मूर्तियों की भांति नहीं होने चाहिए वह संचालित होने चाहिए। 'पात्र अतीत, वर्तमान, भविष्य तथा स्वदेश-विदेश जहाँ के भी हो, उनकी सृष्टि कहानी के क्षेत्र में हो सकती है, लेकिन सृष्टि में केवल एक शर्त होनी चाहिए, उनकी पार्थिवता और स्वाभाविकता में हमें किसी प्रकार का संदेह न हो।'[20] पात्रों का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली होना चाहिए कि पाठकों के मन में अंतर्द्वंद की स्थिति और प्रश्न खड़ा कर सके। ऐसे पात्र पाठको के अंतर्मन में प्राणशक्ति का संचार भी करते है। कहानी में पात्रों की संख्या अधिक नहीं होनी चाहिए , पात्रों की संख्या अधिक होने के कारण कहानी सफल नहीं होगी।

कहानीकार पात्रों का चरित्र-चित्रण दो प्रकार से करता है – (1) प्रत्यक्ष रूप से तथा (2) प्रच्छन्न रूप से। प्रत्यक्ष रूप से वह स्वयं वर्णनों और संकेतों के द्वारा चरित्र का उद्घाटन करता है और प्रच्छन्न रूप से वार्तालाप और घटनाओं के माध्यम से। कहानी में सीमाओं के अंतर्गत पात्रों की अवस्था, रूप रंग तथा

---

[19] Seon O. Faolain. The short Story, p. 165

[20] राय, गुलाब. काव्य के रूप, पृ॰ 220

उनकी पूरी स्थिति का पूर्ण विवरण नहीं दिया जाता है। "पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए चार साधनों का प्रयोग किया जाता है"[21] - (**1**) वर्णन, **(2)** संकेत, **(3)** कथोपकथन और **(4)** घटना-कार्य-व्यापार।

(3) कथोपकथन और संवाद योजना

कथोपकथन कहानी कला का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। इसमें नाटकीय तत्व विद्यमान रहता है। कथोपकथन के द्वारा कहानी में रोचकता और सजीवता में वृद्धि होती है इसलिए कहानी में कथोपकथन और संवाद कहानी के अनिवार्य तत्व है। "लक्ष्मी नारायण लाल ने इसे कहानी कला का अनिवार्य तत्व माना है। उनके मतानुसार इससे कहानी में जिज्ञासा, आकर्षण, सजीवता इससे पाठको की जिज्ञासावृत्ति को प्रेरणा मिलती है। कहानी के विकास में यह उस कलात्मक श्रृंखला का कार्य करता है जो एक घटना से कहानी की अन्य आगे आने वाली घटनाओं से हमारा तादात्मय जोड़ती रहती है"[22]। इस तरह कहानी के अंतर्गत कथोपकथन के तीन प्रकार होते हैं -

i. कथावस्तु का विकास
ii. पात्रों का चरित्र-चित्रण तथा
iii. समूची कहानी में कौतूहल के सहारे प्रवाह और आकर्षण की सृष्टि।

डॉ॰ जगन्नाथ प्रसाद ने संवाद तत्व के महत्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि– "संवाद अपने प्रकृतत्व, औचित्य और व्यावहारिक रचना से ही अपने सौन्दर्य और आकर्षण को समझा देते हैं, उनमे तर्क-वितर्क, चिंतन-मनन की उतनी अपेक्षा नहीं होती। यदि देशकाल और संस्कृति-विशेष का कोई प्राणी किसी से भी किसी प्रकार की बातचीत करता है, तो उसकी बातचीत की प्रांजलता और विदग्धता, शब्द और वाक्य के प्रयोग और पदावली से हमें प्रत्यक्ष मालूम होता है कि वह किस कोटि, वर्ग, देश और काल का है। संवाद जहाँ एक ओर कथा के प्रसार का मुख्य साधन होता है, वही चरित्र उद्घाटन का भी ; साथ ही देशकाल का भी पर्याप्त बोध करा देता है।"

कहानीकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि संवादों का प्रयोग करते समय उसमे वर्णन-विवेचन में सुन्दर समन्वय एवं अनुपात होना चाहिए तभी कहानी का रूप उत्कृष्ट होगा। संवादों में सुन्दर शब्दों का समन्वय न होने के कारण कहानी, कहानी न रहकर एकांकी और नाटक में परवर्तित हो जाती

---

[21] लाल, डॉ॰ लक्ष्मी नारायण, (1996), हिंदी कहानियों की शिल्प विधि का विकास, पृ॰ 225

[22] लाल, (डॉ॰) लक्ष्मी नारायण, (1996), हिंदी कहानियों की शिल्प विधि का विकास, पृ॰ 227

है। संवादों को सदैव स्थान, परिस्थिति एवं पात्रों के अनुकूल ही होना चाहिए। संक्षिप्तता संवादों की विशेषता है , लम्बे-लम्बे संवाद कहानी को अरुचिकर बना देते है। संवाद सदैव बोलने वाले पात्रों के अनुसार होना चाहिए , ऐसा नहीं होना चाहिए की विद्वान व्यक्ति के लिए साधारण भाषा और मूर्ख व्यक्ति के लिए संस्कृतनिष्ठ भाषा अन्यथा कहानी के विकास में बाधा उत्पन्न होगी। संवाद और कथोपकथन का प्रयोग कहानी को उत्कृष्ट शैली में ढालने के लिए महत्वपूर्ण है।

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने संवादों के औचित्य की चर्चा करते हुए कहा है –

" कथोपकथन का तारतम्य ऐसा हो जैसे नदी में लहरों की गति और उस पर वायु का सहज संगीत, जिसके सहारे पाठक के हृदय में उत्तरोतर कहानी पढ़े की आकांक्षा और जिज्ञासा दोनों बनी रहें।"[23]

संवाद और कथोपकथन कहानी को गति देता है, जिसके कारण कहानी में रोचकता और आकर्षक शक्ति का प्राणतत्व होता है।

इस सन्दर्भ में जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने कहा है –

" केवल क्रियोत्तेजक, गतिशील और भावोद्बोधन करने वाले संवाद ही कहानी में स्वीकृत होने चाहिए। केवल चमत्कार-प्रदर्शन और सिद्धांत-विवेचन करने वाले संवाद तो उपन्यासों में ही चल सकते हैं। सच पूछा जाये तो संवाद-सौन्दर्य का निर्वाह आज कहानी की प्रमुख विशेषता है।"

(4) वातावरण

कहानीकार कहानी में वातारण का चित्रण इस प्रकार करता है कि पाठक कहानी को पढ़ते समय उसी लोक और परिस्थिति में पहुँचाए जाए। यद्यपि कहानी में वातारण का चित्रण और परिस्थिति कहानी से सम्बंधित न हो तो कहानी रोचक नहीं होगी। वातारण का चित्रण वास्तविक होना चाहिए। देशकाल और वातावरण कहानी की संरचना को महत्वपूर्ण बनाते है। वातावरण और कहानी में अलगाव नहीं होना चाहिए अन्यथा कहानी काल्पनिक लगेगी।

डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने वातावरण का वर्णन करते हुए कहते है –

---

[23] लाल, (डॉ॰) लक्ष्मी नारायण, (1996), हिंदी कहानियों की शिल्प विधि का विकास

" भिन्न इन्द्रियों और उनके ज्ञान का बोध जब हो लेता है और जितनी उत्तमता से हो लेता है, तब उन्हीं सबका प्रभाव मस्तिष्क में भर या छा उठता है। कहानी के वस्तु प्रसार के तनाव पर परिव्याप्त जो एक प्रकार का वायुमंडल अथवा वातावरण होता है, उसे कहानी का शुद्ध मानस-आयोग मानना चाहिए।"

वातावरण के निर्माण में प्रकृति, चित्रण तथा रूप-वर्णन इसकी मुख्य विशेषता है। सामाजिक कहानियों में कहानी वर्णित प्रवृत्ति विशेष के अनुसार उससे सम्बंधित आचार-विचार, रीति-नीति, आदि का ध्यान रखना आव्यशक है। कहानी में देश, काल, तथा वातावरण का चित्रण इस प्रकार होना चाहिए की चित्रण स्वाभाविक, यथार्थ, आकर्षक और यथासंभव पात्रों की मनः स्थिति के अनुकूल छोटे होने चाहिए। भाव प्रधान कहानियों में संवेदनशील चित्रण और प्रकृति का सचेतन वातावरण का निर्माण किया जाता है। वातावरण का चित्रण आधुनिक कहानियों में देशकाल एवं परिस्थिति के आधार पर किया जाता है।

श्री कृष्ण लाल ने देशकाल और वातावरण का वर्णन करते हुए लिखा है कि –

इसके चित्रण में इतनी व्यापकता आती जा रही है कि एक और इसके अंतर्गत देशकाल के वर्णन की अभिव्यक्ति अत्यंत व्यंजनात्मक रूप में हो जाती है और दूसरी ओर इसकी विशुद्धता से कहानी में ऐसा सुगठित वातावरण प्रस्तुत होता है, जिसके सफल परिपार्श्व में कहानी की समूची संवेदना पात्रों की गति के साथ पाठक के सामने चित्रित हो जाती है। इसका कारण यह है कि आज की कहानी-कला प्रायः व्यक्ति के चरित्र के धरातल से निर्मित होकर अपने वास्तविक स्वरुप में पूर्ण मनोवैज्ञानिक की ओर विकसित हो रही है।"[24]

कहानी में आरम्भ से ही शक्तिशाली वातावरण की अवतारणा की जाती है। इसका चित्रण कहानी में पात्रों की मनोवैज्ञानिकता तथा उनके आतंरिक संघर्ष दोनों ही बिन्दुओं को स्पष्ट किया जाता है। सम्पूर्ण कहानी में आकर्षण और प्रेरणा आती है, जिससे पाठक पूरी कहानी में रम जाता है।

---

[24] लाल, (डॉ॰) श्री कृष्ण. आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास

(5) भाषा शैली

भाषा मनुष्य की पहचान है, यदि मनुष्य को भाषा का ज्ञान नहीं है तो वह एक पशु समान है। हर भाषा का अपना समाज होता है जहाँ वह प्रयुक्त होती है। भाषा के बिना समाज में मनुष्य के अस्मिता पर संकट है। यद्यपि किसी समाज को उसके भाषा से अलग कर दिया जाए तो उसकी अस्मिता खंडित हो जाती है। भाषा और समाज का बहुत गहरा अंतर्संबंध है। दोनों अपने अस्तित्व के लिए एक दूसरे पर निर्भर है। प्रत्येक रचनाकार की अपनी भाषा और शैली होती है। भाषा किसी भी रचना का शरीर है जिसमे उसकी आत्मा रहती है और उस आत्मा सहित शरीर को संवाद के रूप में प्रस्तुत करना शैली का ढंग है। कहानी के सभी तत्वों और उपकरणों का उपयोग शैली से ही होता है। इस सन्दर्भ में यहाँ स्पष्ट किया गया है कि – "शैली तत्व कहानी कला के समस्त उपकरणों के उपयोग करने की रीति है।" कहानी एक लघु रचना होती है, इसलिए कहानीकार कहानी का निर्माण करते समय पूर्ण कौशल और सावधानी बरतता है। कहानी का भाव पक्ष तभी उत्कृष्ट एवं सफल होगा जब कहानी का कला पक्ष अत्यंत शक्तिशाली एवं प्रभावशाली हो। कला पक्ष शैली तत्व के सफलता में निहित रहती है।

(6) उद्देश्य

कहानीकार किसी न किसी उद्देश्य से कहानी की संरचना करता है, उसमे किसी एक ऐसी मूल संवेदना का चित्रण होता है, जिसका अनुभव कर पाठक उसके विषय में सोचने को बाध्य हो जाता है। उद्देश्य कहानी कला का अंतिम तत्व है। उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कहानीकार अपनी कहानी में विविध प्रयोग करता है। समाज में व्याप्त असंगतियों, परस्थितियों, समस्याओं के प्रति कहानीकार जो अनुभव ग्रहण करता है उसके निदान और उसके निर्णय के लिए कहानीकार उद्देश्य की पूर्ति करता है। "उद्देश्य को पूर्ण रूप से व्यंजित और चरितार्थ करने के लिए कहानीकार को अपनी कहानियों को विभिन्न शैलियों और रूप विधानों में रखना पड़ता है क्योंकि एक शैली में उद्देश्य की एक ही दिशा सफलतापूर्वक चरितार्थ की जा सकती है और उसकी कहानी के उद्देश्य-तत्वों, कहानीकार के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा, आधुनिक कहानी की सबसे बड़ी विशेषता है।"[25] "कहानी की शैली, कहानी के रूप विधान में इतनी

---

[25] लाल, (डॉ॰) लक्ष्मी नारायण, (1996), हिंदी कहानियों की शिल्प विधि का विकास, पृ॰ 236

चाल, इतने हस्तलाघव केवल व्यक्ति-प्रतिष्ठा के लिए ही किए जाते है ,अन्य लक्ष्य से नहीं।"[26] कहानी में जितनी गहरी संवेदना होगी कहानी उतनी ही उत्कृष्ट, शाश्वत और सफल मानी जाती है।

निष्कर्षतः 'शिल्प' शब्द पूर्णतः भारतीय है। इसका भी संकेत किया गया है कि भारत में पुरातन काल से इस शब्द का प्रयोग मूर्तिकला के क्षेत्र में होता आया है। जो कि इसमें मूलतः कलात्मक सौन्दर्य को व्यक्त करने की प्रक्रिया है। इसी शब्द का प्रयोग, कलांतर में साहित्य में होने लगा। 'शिल्प' शब्द में जो व्यापकता या गहराई है, वह इन विभिन्न शब्दों द्वारा प्रकट नहीं होती। निश्चय ही 'शिल्प' शब्द अपने आप में एक ऐसा सार्थक शब्द है जिसके बदले दूसरा शब्द उपयुक्त नहीं लगता।

[26] Seam o' Faolain , Short Stories